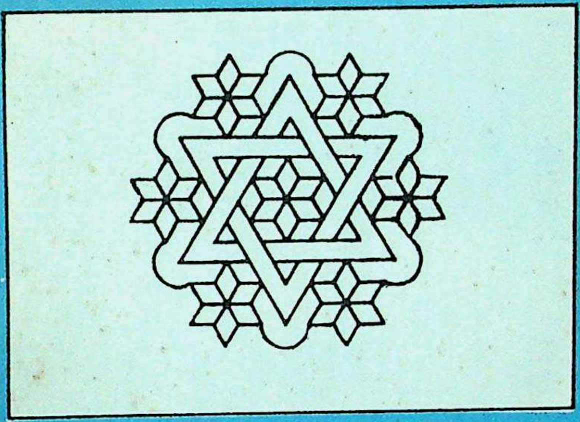
पराग



केरल विश्वविद्यालय प्रकाशन

पराग

(Hindi)
PARAG
Poetry Collection

Compiled by
A committee appointed by the
University of Kerala

Type setting by
Krishna Computer Designs

Printed at
Janayugom Press
Kollam

Published 1994

Price Rs. 7.00

Published by
Dr. A. Razaludeen
Director
Department of Publications
For the University of Kerala,
Thiruvananthapuram

पराग

प्रकाशन विभाग
केरल विश्वविद्यालय
तिरुवनन्तपुरम

१९९४

निवेदन

'पराग' हिन्दी कविताओं का संकलन है जो प्री-डिग्री द्वितीय वर्ष के छात्रों के लिये तैयार किया गया है। सूर, तुलसी, कबीर और बिहारी की कविताओं में अभिव्यक्त भक्ति और नीति का समन्वय, काल्पनिक कविताओं की वैयक्तिक अनुभूतियों में व्यंजित प्रेम, पीडा और संघर्ष की पहचान तथा वर्तमान कवियों की रचनाओं में मुखरित तनाव, बौद्धिक विश्लेषण एवं सामाजिक प्रतिक्रिया - इस संकलन की कविताओं में प्रतिबिम्बित कराने का प्रयास किया गया है।

आशा है कि 'पराग'-प्रसरण से छात्र प्राचीन तथा नवीन कविताओं का सौगन्ध पा सकेंगे।

जिन कवियों तथा प्रकाशकों ने अपनी रचनाओं को 'पराग' में संकलित करने की अनुमति दी है उनके प्रति केरल विश्वविद्यालय के प्रकाशन-विभाग की ओर से धन्यवाद।

निबन्ध तथा नाटक के अध्ययन के बाद कविता पढ़ने के लिये उत्सुक छात्रों को विश्वविद्यालय की ओर से शुभकामनाएं !

आर. रवीन्द्रन नायर
अध्यक्ष, पाठ्यसमिति
केरल विश्वविद्यालय

विषय सूची

कबीरदास

[महात्मा कबीरदास मध्ययुग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में एक हैं । उनका महत्व इस बात में है कि उनके विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने मध्यकाल में प्रासंगिक थे । जब देश में धर्म को लेकर हिन्दू और मुसलमान दो ध्रुवों में चले गए तब कबीर ने दोनों समुदायों को निकट लाने का सराहनीय कार्य किया था । उन्होंने यह संदेश दिया कि राम और रहीम एक ही ईश्वर के दो नाम हैं अतः ईश्वर के नाम को लेकर लड़ना मूर्खता है ।

कबीर ने अपने समाज में प्रचलित दुराचारों को दूर करने का प्रयास किया । उन्होंने सब को समझाया कि सब के सब एक ही खुदा के बन्दे हैं । सब मानव मानव हैं समान की भावना का उन्होंने प्रचार किया । कबीर के व्यक्तित्व में एक संत और समाज सुधारक का अपूर्व संगम पाया जाता है ।

निर्धनता तथा निम्न जाति में पलने के कारण कबीर की शिक्षा-दीक्षा तो न हो सकी, किन्तु वे आत्मज्ञानी थे । उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम एकता, भौतिक एवं आत्मिक परिष्कार, प्रेम, सच्चाई, सादगी आदि पर बल दिया, और दूसरी ओर जाति-पाँति, ऊँच-नीच, मूर्ति-पूजा, तीर्थ-व्रत आदि का खण्डन किया । कबीर का अनश्वर विचार जनता के लिए था और उसी के बीच पनपा था । अतः बहुश्रुत कबीर ने व्यापक क्षेत्र में बोली और समझी जाने वाली भाषा में अपने विचार प्रस्तुत किए ।

कबीरदास की रचनाएँ तीन भागों में विभक्त हैं - साखी, सबद और रमैनी, जो बीजक नामक ग्रन्थ में संकलित हैं ।]

साखी

1. आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोई पूछै बात ।
सो गूँगा गुड़ खाइकै, कहै कौन मुख स्वाद ॥

2. कामी क्रोधी लालची, इनतें भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥

3. यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं ।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठे घर माँहिं ॥

4. नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय ।।

5. दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ।।

6. साँई इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय ।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय ।।

7. पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम ।
दोनो हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम ।।

8. सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर होय ।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय ।।

9. निदंक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ।।

10. सहज मिले सो दूध सम, माँगे मिले सो पानि ।
कह कबीर वह रक्त सम, जामें ऐंचातानि ।।

शव्दार्थ

1. आतम अनुभव = आत्मा का अनुभव, पूछै = पूछे, खाइ कै = खाकर, कहै = कह सकेगा, कौन मुख = किस मुख से ।

2. इनते = इनसे, कोइ = कोई, सूरमा = शूर, बरन = वर्ण, खोय = खोकर, नष्ट कर।

3. नाहिं = नहीं, सीस उतारै = सिर उतार कर, भुइँ धरै = भूमि पर रखे तो, पैठे = प्रवेश कर सकता है, घर माँहि = घर में ।

4. बिछाय = बिछाकर, चिक = पर्दा, डारिकै = डालकर, पिय = प्रिय, रिझाय = प्रसन्न किया जाय ।

5. सुमिरन = स्मरण, करै = करता है, कोय = कोई, काहे = क्यों, होय = होगा, होता है ।

6. साँई = स्वामी, ईश्वर, जामें = जिसमें, समाय = सँभाला जा सके ।

7. बाढ़े = बढ़े, दाम = सम्पत्ति, उलीचिये = बाहर कीजिए, निकालिए, यहि = यही, को काम = का काम ।

8. कटि = कटकर, उजियारा = उजाला ।

9. नियरे राखिये = निकट ही रखिए, कुटी छवाय = कुटी बनाकर, बिन = बिना, सुभाय = स्वभाव ।

10. जामें = जिसमें, ऐंचातानि = खींचतान ।

***

सूरदास

[सूरदास रससिद्ध कवीश्वर हैं । वे कृष्ण भक्ति-शाखा के भक्त और गायक कवि हैं। जीवन की मोह मायाओं को छोड़कर वे वृन्दावन में रुनकता गाँव के पास यमुना नदी के किनारे रहने लगे । वहाँ उनकी पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य से भेंट हुई । अष्टछाप का प्रमुख भावुक कवि सूर श्रीनाथजी के मंदिर में प्रतिदिन कृष्ण लीला का एक नया पद गाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कराते थे । आप की रचनाओं में भक्ति, श्रृगांर, दर्शन, वात्सल्य आदि का सुन्दर सामंजस्य हुआ है । उनके विनय के पद, बालकृष्ण की लीलाओं का वर्णन और भ्रमर गीत अपनी-अपनी निजी विशेषताओं के कारण विशेष कांतिमान और आकर्षक हैं । दास्य और सरल भाव के पदों की रचना में सूर सिद्ध-हस्त हैं ।

सूर बडे रसज्ञ और संगीतज्ञ थे और थे ब्रज भाषा के शब्द-शिल्पि, राग रागनी के पारखी, नाना विद्याओं कलाओं का मर्मज्ञ । उन्होंने जिन रंगों, दृश्यों का सुन्दर वर्णन किया है, उससे यह आभास होता है कि सूर जन्मान्ध नहीं थे । वात्सल्य और श्रृंगार की गंगा-यमुना, 'सूर सागर' में इस भाँति मिली हैं कि उसमें कौन रस मग्न नहीं होता ? 'सूर सारावली', 'साहित्य लहरी' आदि भी सूर की अमर रचनाएँ हैं ।

1

अब कैं राखि लेहु भगवान ।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरियां, पारधि साधे बान ।
ताकै डर मैं भाज्यो चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान ।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान ?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान ।
सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय जय कृपानिधान ।।

2

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नंद कैं आँगन, बिंब पकरिबैं धावत ।

कबहूँ निरखि हरि आपु छाँह कौ, कर सौं पकरन चाहत ।
किलकि हँसत राजत दूवै दतियाँ, पुनि पुनि तिहिं अवगाहत ।
कनक भूमि पर कर पग छाया, यह उपमा इक राजति ।
करि-करि प्रतिपद, प्रतिमनि वसुधा, कमल बैठकी साजति ।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावति ।
अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ।।

3

प्रथम करी हरि माखन-चोरी ।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी।
मन मैं यहै विचार करत हरि, ब्रज घर घर सब जाऊँ ।
गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकैं माखन खाऊँ ।
बाल-रूप जसुमति मोहिं जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं, ये मेरे ब्रज लोग ।।

4

बूझत स्याम कौन तू गोरी ।
कहां रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी ।
काहे कौं हम ब्रज-तन आवति, खेलति रहहिं आपनी पौरी ।
सुनत रहति स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखनदधि चोरी ।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ।।

5

ऊधौ मन न भए दस बीस ।
एक हुतौ सौ गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस ।।
इंद्रि सिथिल भई केसव विनु, ज्यौं देही विनु सीस ।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि वरीस ।।

तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस ।
"सूर" हमारे नंदनंदन बिनु, और नहिं जगदीस ।।

शब्दार्थ और भावार्थ

1. राखि लेहु = रक्षा कर लो, हौं अनाथ = मैं अनाथ हूँ, द्रुम = वृक्ष, डरियां = डाली पर, पराधि = शिकारी, भज्यो चाहत = भाग जाना (उड़ जाना) चाहता, सचान =गिद्ध, दुक्यौ = छिपकर बैठना, छिपकर आक्रमण करना, दुहूँ भाँति = दोनों प्रकार से, दोनों तरफ से, दुहूँ......आनि यह = दोनों ओर से दुख, यह जो आकर प्रकट हुआ, उबारै = उद्धार करना, सुमिरत ही = स्मरण करते हो, अहि = सांप, कर छूटयौ संधान = सर-सन्धान किया हुआ हाथ छूट गया ।

सूरदास कृपा निधान श्री कृष्ण से प्रार्थना करते हैं । हे भगवान, अब मुझ अनाथ को इस विपत्ति से बचा ले । मैं अनाथ वृक्ष की डाली में बैठा हुआ हूँ नीचे एक शिकारी धनुष बाण लेकर मुझ पर सर-साध कर खडा है । उससे डरके मैं भाग जाना (उड जाना) चाहता हूँ । मगर ऊपर गिद्ध मुझे उठा ले जाने के आग्रह से छिप कर बैठा है । इस तरह दोनों ओर से संकट की स्थिति आ गयी है । अब मेरे प्राणों की रक्षा कौन करेगा ? भगवान का नाम स्मरण करने मात्र से एक सांप ने शिकारी को डंस लिया और उसके हाथ का बाण लक्ष्य छूट कर गिद्ध के शरीर पर लग गया और वह मर गया । हे कृपानिधान भगवन तेरी जय हो ।

सांसारिक जीवन रूपी महावृक्ष पर जीवात्मा रूपी पक्षी बैठा हुआ है । एक तरफ यम-रूपी गिद्ध और दूसरी तरफ माया रूपी शिकारी से वह घिरा हुआ है । कृपानिधान भगवान की शरण से ही इस द्विविध विपत्ति से उसकी मुक्ति संभव हो सकती है । जिसके ऊपर ईश्वर की कृपा है माया या काल उसका कुछ भी बिगाड नहीं सकता । यही इस पद के द्वारा सूरदास स्पष्ट करना चाहते हैं ।

2. किलकित = किलकारियाँ मार कर हँसना, घुटुरुवनि आवत = घुटनों पर चल कर आता है, बिंब पकरिबै = अपने प्रतिबिंब को पकड़ने के लिए, धावन = दौड़ता है, निरखि = देखकर, आपु छाँह = अपनी छाया, कर सौं = हाथ से, पकरन = पकडना, राजन = शोभित, दूवै दतियाँ = दोनों दाँत, अवगाहत = पीछा करता है,

कर-पग-छाया = हाथ और पैर की छाया, बैठकी = पीठा, साजति = सजाती है, अँचरा = वस्त्र, तर = तल नीचे, ढँकि = ढक कर ।

बाल शोभा का वर्णन है । बाल लीलाओं का वर्णन सूर ने बेजोड़ किया है ।

कान्ह किलकारियाँ मारते हुए घुटनों पर चलकर आता है । नंद के कनक समान मनिमय चिकने आँगन में वह अपनी छाया (प्रतिबिम्ब) पकडने के लिए दौडता है । जब-जब वह अपनी छाया को देखता है तब-तब उसे अपने हाथों से पकडना चाहता है । बीच-बीच में रुक कर वह किलकारियाँ मारता है । तब उसके दोनों दांतों की शोभा बाहर प्रकट होती है । फिर वह प्रतिबिम्ब को पकडने के लिए उसका पीछा करता है । उस कनकमय आँगन में पडने वाले हाथ और पैर की छाया की केवल ऐसी उपमा ही राजती है कि भूमि देवी ने कृष्ण के हर हाथ पैर की प्रतिमाओं के नीचे कमल का बैठक सजाकर रखा है । बालक की स्थिति का ऐसा सुखद दृश्य देख कर यसोदा बार-बार बुलाकर नंद को वह आनंदमय दृश्य दिखा देती है । उसके बाद सूरदास के प्रभू कृष्ण को वह गोदी में उठाकर अंचल से ढँककर उसे दूध पिलाती है ।

बाल लीला का ऐसा वर्णन सूरदास को अमर कवि का पद प्रदान करने लायक है ।

ग्वालिनि = ग्वाल-स्त्री, गोपिका, भजे = भाग गये, ब्रज-खोरी = ब्रज की गली ।

हरि ने पहली बार मक्खन की चोरी की । इस तरह उन्होंने गोपिकाओं के मन की इच्छा की पूर्ति की । उसके बाद वह ब्रज के मार्ग से भाग गये । इस समय हरि ने मन में ऐसा विचार किया कि इस तरह ब्रज के सारे घरों से मक्खन चुरा कर मैं खाऊँ । क्योंकि इस गोकुल में सभी को सुख प्रदान करना ही मेरे यहाँ जन्म लेने का उद्देश्य है । जशोदा मुझे केवल अपने बालक के रूप में मानती है । लेकिन मुझे तो यहाँ की सभी गोपिकाओं के साथ सुख भोग का अनुभव करना है । सूरदास के प्रभू प्रेम पूर्वक कहते हैं कि ये सारे ब्रजवासी मेरे अपने लोग हैं ।

माखन चोर - कृष्ण के लोक-रंजक स्वरूप का जो वर्णन यहाँ सूर ने किया है, वह बेजोड़ है ।

4. बूझत = पूछता है, काकी है बेटी = किसकी बेटी है, ब्रज-खोरी = ब्रज की रा में, ब्रज तन = ब्रज भूमि, काहे कौ = क्यों, पौरी = गली, नंद-ढोरा = नंद बा का बेटा, खेलन चलो संग मिली जोरी = (हम) जोडी बनकर साथ खेलने च बातनि भुरइ = बातों में भुलाना, भोरी = भोली ।

प्रथम दर्शन में ही राधा को वश में करने वाले रसिक शिरोमणी श्रीकृष्ण का व है प्रस्तुत पद ।

श्याम ने पूछा री, गोरी तू कौन है । कहाँ रहती है और किसकी बेटी है । ब्रज राहों में इसके पहले कभी मैंने तुझ को देखा तक नहीं है । तो राधा कहती है क्यों ब्रज भूमि में आऊँ । खेलना है तो मैं अपनी गली में ही क्यों न खेल सकती और मैंने यह भी सुना है कि यहाँ किसी नंद का बेटा माक्खन दधी की चोरी करता है । भला मैंने तुम्हारी किस चीज़ की चोरी की है ? आओ हम जोडी कर साथ खेलने चलें । इस तरह सूरदास के प्रभू रसिक शिरोमणी कृष्ण ने भो राधा को अपनी बातों में भुलावा देकर वश में कर लिया है ।

राधा-कृष्ण के प्रेम प्रसंग का ऐसा सहज और अनूठा वर्णन सूर को लोकि रस-मर्मज्ञ कवि सिद्ध करता है ।

5. भए = हुए, एक हुतौ सौं = एक जो हुआ सो (एक जो था वह), अवराधे उपासना करे, इंद्री = इंद्रिय, देही बिनु सीस = बिना सर का शरीर, स्वासा श्वास, वरीस = वर्ष ।

प्रस्तुत पद भ्रमरगीत प्रसंग से लिया गया है । गोपी उद्धव संवाद का यह प्र अत्यन्त सजीव है । विरह विदग्ध गोपिकाओं को निर्गुण भक्ति का उपदेश देने लिए उद्धव आ गया है । लेकिन श्रीकृष्ण के प्रति गोपिकाओं के मन में निष्कलंक अटल प्रेम है उसके सामने उद्धव का सारा तर्क असफल हो जाता है गोपिकाएँ कहती हैं — हे उद्धव हमारे दस-बीस हृदय नहीं हैं । एक जो था श्याम के संग चला गया है । फिर हम कैसे तुम्हारे निर्गुण-ब्रह्म की उपासना क सिर के बिना शरीर जिस प्रकार शिथिल हो जाता है उसी प्रकार हमारी सारी इं शिथिल हो गयी हैं । कृष्ण को फिर से देखने की आशा इस शरीर में बनी रहती केवल इसी आशा के कारण ही यह शरीर श्वास लेता है और जीवित रहता है ।

इसी आशा में बाँध कर यह शरीर इसी प्रकार कोटि वर्ष तक जीवित भी रह सकता है । हे उद्वव तुम तो श्यामसुन्दर के दोस्त हो और सकल योग के ईश (अधिकारी) भी हो । हमारे लिए नंदनंदन के बिना कोई दूसरा ईश्वर है ही नहीं है ।

भ्रमर गीत में प्रेम और भक्ति का वर्णन उसकी चरम सीमा पर है । इन्हीं पदों के द्वारा सगुण-निर्गुण की चर्चा और तुलना करके सगुण भक्ति की महिमा का बखान किया गया है ।

***

बिहारीलाल

[बिहारी रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवियों में अग्रणी हैं । इनका जन्म 1595 में ग्वालियर में हुआ था । इनका अधिकांश जीवन मथुरा में जहाँ इनका ससुराल था वहीं व्यतीत हुआ । इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है जो सात सौ दोहों का एक संग्रह है । कवि का मुख्य विषय श्रृंगार है, कुछ दोहे नीति और भक्ति भावों से भी सम्बद्ध हैं ।

कवि ने छोटे आकार के दोहा छन्दों में भावों को बडे सघन ढंग से प्रस्तुत किया है । इसलिए बिहारी के लिए यह उक्ति प्रसिद्ध है कि उन्होंने गागर में सागर भरा है । बिहारी भाव सौन्दर्य की अपेक्षा दैहिक एवं मांसल सौन्दर्य में अधिक कुशल हैं । इनके द्वारा अंकित प्रेम में आध्यात्मिकता का आग्रह नहीं है । इनका प्रेम जीवन की आनन्दमयी क्रीड़ा का ही प्रतिरूप है । विरह वर्णन में कवि ने अतिश्योक्ति एवं अत्युक्ति का सहारा लिया है । अतः इनका विरह वर्णन पढ़कर सहानुभूति का भाव न जाग कर हँसी आती है । बिहारी सतसई में चमत्कारिकता, अलंकरण तथा शास्त्रीय तत्वों का गहन अनुशासन है ।

बिहारी ने काव्य भाषा के रूप में ब्रज भाषा को अपनाया है । इनकी व्रजभाषा पर बुन्देली का भी प्रभाव है । बिहारी ने संस्कृत, अपभ्रंश, फारसी, बुन्देली आदि के शब्दों को अपनाकर अपनी कविता की भाषा को शक्तिशाली बनाया है ।]

दोहे

1. मेरि भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित दुति होइ ।।

2. जगत् जनायौ जिहिँ सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि ।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाहिं ।।

3. नहिँ परागु, नहिं मधुर मधु नहिं विकासु इहिं काल ।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल ।।

4. बडे न हूजै गुननु बिन बिरद - बडाई पाइ ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़यौ न जाइ ।।

5. नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतौ नीचो ह्वै चलै, तेतौ ऊँचो होइ ।।

6. सोहत ओढैं पीतु पटु स्याम, सलौनैं गात ।
मनौ नीलमनि सैल पर आतपु परयौ परभात ।।

7. संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कै धंध ।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध ।।

8. को कहि सकै बडेनु सौं लखैं बडीयौ भूल ।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ।।

9. दिन दस आदरु पाइ कै करि लै आपु बखानु ।
जौ लगि काग ! सराधपखु, तौ लगि तौ सनमानु ।।

10. अरुन सरोरुह-कर-चरन, दृग खंजन, मुख चंद ।
समै आइ सुंदरि सरद कहि न करति अनंद ।।

शब्दार्थ

1. भवबाधा = सांसारिक कष्ट, नागरि = चतुर, झाँई = प्रतिबिम्ब, परै = पड़ने से, हरित = प्रसन्न ।
2. जनायौ = ज्ञान का विषय बनाया, देखियै = देखा जाता है ।
3. परागु = सौरभ, विकास = प्रस्फुटन, अली = मित्र, भ्रमर, हवाल = दशा ।
4. हूजे = हो सकता, विरुद = यश, कनक = धतूरा, सोना ।
5. गति = दशा, चाल, एकै करि = एक रूप से, जोइ = देखिए ।
6. सलौने = सलावण्य, सैल पर्वत, आतपु = प्रकाश ।
7. संगति = सत्संग, सुमति = सद्बुद्धि ।
8. लखै = देखने पर, दई = दैव ।
9. जौ लगि = जब तक, सराधपखु = श्राद्ध पक्ष, तौ लगि = तब तक ।
10. अरुन = लाल, सरोरुह = कमल, आनंद = आनंदित ।

***

तुलसीदास

[रामभक्त कवियों में तुलसीदास का स्थान सर्वोपरि है। वे असाधारण शक्तिशाली कवि थे। साथ ही वे लोक-नायक तथा महात्मा थे। उन्होंने बारह काव्यों की रचना की है। उनमें सबसे प्रसिद्ध और श्रेष्ठ है रामचरितमानस। विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली आदि उनकी अन्य रचनाएँ हैं।

तुलसीदास सच्चे अर्थों में लोक-नायक थे। उन्होंने परस्पर विरोधिनी साधनाओं, सस्कृतियों तथा आचार-विचारों का समन्वय करने की चेष्टा की। सगुण और निर्गुण के समन्वय के लिए उन्होंने रामनाम का सहारा लिया।

तुलसी की भक्ति दास्य भाव की भक्ति थी। वे आदर्श-स्रष्टा थे और अपने काव्य से भावी समाज की नींव डाल रहे थे। लोक-संग्रह का भाव उनकी भक्ति का अभिन्न अंग था।

तुलसी ने अवधी और ब्रजभाषा में काव्य रचे हैं। रामचरितमानस की भाषा अवधी है।

रामचरितमानस के विविध प्रसंगों से चुनकर कुछ छंद यहाँ दिये गये हैं। प्रबंध काव्य के अंश होते हुए भी वे छंद अपने में पूर्ण और स्वतंत्र हैं। तुलसी की नीति समन्वित भक्ति का परिचय इन छंदों से मिलता है।]

दोहे

1 पर हित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीडा सम नहीं अधमाई।
निर्नय सकल पुरान बेदकर। कहेऊँ तात जानहिं कोबिद नर ॥

2 जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥

3 उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिनि गुन बिलगाहीं।
सुधा सुरा सम साधु असाधु। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥

4 बिनु सतसंग बिवेक न होइ। राम कृपा बिनु सुलभ न लोई।
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूल।

5 जाति पाँति कुल धर्म बडाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ।
भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।

6 संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चदंन आचरनी ।
काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुण देइ सुगंध बसाई ।।

7 छूटइ मल कि मलहिं के धोएँ । धृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ ।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभि अँतर मल कबहुँ न जाई ।।

8 कीट मनोरथ दारू सरीरा । जेहि न लग धुन को अस धीरा ।
सुत बिन लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ।।

9 सोइ सयान जो पर धन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ।
जो कह झूँठ मसखरी जाना । कलिजुग सोई गुनवंत बखाना ।

10 संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह पीर कहै न जाना ।
निज परिताप द्रवई नवनीता । पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ।।

शब्दार्थ

1 सरिस = सदृश, समान, अधमाई = नीचता, निर्नय = निर्णय, कर = का, तात = भाई, कोबिद नर = पंडित लोग ।

2 बिस्व = विश्व, संसार, करता = विधाता, गहहिं = ग्रहण करते हैं, पय = दूध, परिहरि = छोड़कर, बारि = जल, बिकार = विकार, विषय वासनाएँ ।

3 माहीं = में, जलज = कमल, जोंक = शरीर का रक्त चूसने वाला कीडा जो पानी में रहता है , जिमि = जैसा, बिलंगारी = अलग होते हैं, सुरा = मदिरा, जनक = उत्पन्न करने वाला ।

4 मुद = आनंद ।

5 परिजन = कुटुम्ब, बारिद = बादल ।

6 असि = ऐसी, आचरनी = आचरण, परसु = कुठार, मलय = चदंन, बसाई = बसाता है।

7 कि = क्या, धृत = घी, बिलोएँ = मथने से, अभिअतंर = आभ्यान्तर, अन्दर का।

8 दारू = लकडी, घुन = कीडा, को = कौन, अस = ऐसा, ईषना = प्रबल इच्छा।

9 सयाना = बुद्धिमान, ज्ञानी, आचारी = चरित्रवान, मसखरी = हँसी-दिल्लगी, गुनवंत = गुणवान, बखाना = कहा जाता है।

10 नवनीत = मक्खन, परि = परन्तु, कहै न जाना = कहना नहीं जाना, असली बात कहना नहीं जाना, परिताप = ताप गरमी, द्रवई = पिघलता है, सुपुनीता = परम पवित्र।

***

मैथिलीशरण गुप्त

[राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्तजी का जन्म जिला झाँसी के चिरगाँव में हुआ था। उनके पिता सेठ रामचरणजी भक्त और कवि थे। गुप्तजी की शिक्षा घर पर ही हुई थी। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, बंगला, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं और साहित्यों का गहरा अध्ययन किया था। उनके व्यक्तित्व में अपने पिताजी और घर के सात्विक वातावरण का गहरा प्रभाव रहा। उनकी काव्य-प्रतिभा के विकास में अपने पिताजी का आशीर्वाद, मुंशी अजमेरीजी का प्रोत्साहन तथा पं. महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का दिशादर्शन विशेष उल्लेखनीय हैं। गुप्तजी ने मौलिक और अनूदित काव्य-रचनाएँ की हैं। उनकी चालीस मौलिक और छः अनूदित रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। महाकाव्य, खण्डकाव्य, प्रगीत तथा मुक्तक रचकर उन्होंने खडीबोली को संपन्न किया है। वे रामभक्त कवि और भारतीय संस्कृति के अनन्य गायक थे। रामचरित, कृष्णचरित, बुद्धचरित तथा अन्यान्य पुराणों से उन्होंने विषय चुने हैं। लेकिन उन प्राचीन प्रंसगों और पात्रों को नवीन रंगों में चमका दिया है। देश और काल के अनुरूप मौलिक भावनाएँ और विचार उनकी कविताओं में मिलते हैं। उनके काव्य ने भारतीय जन-जीवन को समग्रता में स्पर्श किया। धार्मिक नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय आदि अनेकमुखी आदर्श उनकी कविताओं में मिलते हैं। वे विश्वास, श्रृद्धा और भक्ति के कवि थे। वे जन-भावना मानवता और सद्भावना के प्रवक्ता थे और समन्वयवादी थे। नारी के प्रति उनमें गहरी सहानुभूति थी। उपेक्षित नारी पात्रों को उन्होंने गौरवमय स्थान दिया। 'भारत-भारती' गुप्तजी कि सबसे लोकप्रिय रचना है। अन्य प्रसिद्ध रचनाओं में 'साकेत', 'पंचवटी', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'जयभारत', 'किसान', 'विष्णुप्रिया' और 'जयद्रथ वध' विशेष उल्लेखनीय हैं। विरहिणी-व्रजांगना, स्वप्न-वासवदत्ता, मेघनाद-वध, वीरांगना, 'प्लासी का युद्ध' और 'रुबाइयात उमर खैयाम' गुप्तजी की अनूदित रचनाएँ हैं। भारतीय संस्कृति के अनन्य पुजारी गुप्तजी को 1949 में आगरा विश्वविद्यालय ने डी.लिट. की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। 1950 से 1964 तक वे राज्यसभा के मनोनीत सदस्य भी रहे। गुप्तजी सच्चे अर्थों में राष्ट्रकवि और महाकवि थे।

'पंचवटी' एक विशिष्ट खण्डकाव्य है जो कोमल भावनाओं और प्रकृतिचित्रण के लिए प्रसिद्ध है। रामचरित में पंचवटी-निवास और वहाँ शूर्पणखा का आगमन का अपना महत्त्व है। कथा-गति में दिशा-मोड शूर्पणखा की निराशा से ही उपस्थित होती है। इस मनोरम काव्य के आरंभ में प्रकृति के रम्य-शान्त वातावरण में सेवाव्रत में लगे लक्ष्मण को हम देखते हैं। उस मौन साधक व्रती वीर के मन को भी गुप्तजी मुखर कर देते हैं।]

पंचवटी में लक्ष्मण

1

चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है,
अवनि और अंबर-तल में ।
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोंको से,
मानो झूम रहे हैं तरु भी
मन्द पवन के झोंकों से ।।

2

पंचवटी की छाया में है
सुन्दर पर्ण-कुटीर बना,
उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर
धीर वीर निर्भीक-मना,
जाग रहा यह कौन धनुर्धर,
जब कि भुवन-भर सोता है ?
भोगी कुसुमायुध योगी-सा
बना दृष्टिगत होता है ।।

3

किस व्रत में हैं व्रती वीर यह
निद्रा का यों त्याग किये ?
राज-भोग के योग्य विपिन में
बैठा आज विराग लिये ?

बना हुआ है प्रहरी जिसका
उस कुटीर में क्या धन है,
जिसकी रक्षा में रत इसका
तन है, मन है, जीवन है ?

4

मर्त्यलोक मालिन्य मेटने
स्वामि-सङ्ग जो आई है,
तीन लोक की लक्ष्मी ने यह
कुटी आज अपनाई है,
वीरवंश की लाज यही है,
फिर क्यों वीर न हो प्रहरी ?
विजन देश है, निशा शेष है,
निशाचरी माया ठहरी !

5

कोई पास न रहने पर भी
जन-मन मौन नहीं रहता,
आप आपकी सुनता है वह,
आप आपसे है कहता ।
बीच-बीच में इधर-उधर निज
दृष्टि डाल कर मोदमयी,
मन-ही-मन बातें करता है
वीर धनुर्धर नयी-नयी ।

6

क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह
है क्या ही निस्तब्ध निशा,

है स्वच्छन्द सुमंद गन्ध वह,
निरानन्द है कौन दिशा ?
बंद नहीं, अब भी चलते हैं,
नियति-नटी के कार्य-कलाप,
पर कितने एकांत भाव से
कितने शांत और चुपचाप ।

7

है बिखेर देती वसुन्धरा
मोती सबके सोने पर,
रवि बटोर लेता है उनको
सदा सबेरा होने पर,
और विरामदायिनी अपनी
संध्या को दे जाता है,
शून्य श्याम तनु जिससे उसका,
नया रूप झलकाता है ।।

8

सरल तरल जिन तुहिन कणों से
हँसती हर्षित होती है,
अति आत्मीया प्रकृति हमारे
साथ उन्हीं से रोती है !
अनजानी भूलों पर भी वह
अदय दण्ड तो देती है,
पर बूढ़ों को भी बच्चों-सा
सदय भाव से सेती है ।।

9

तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके
पर है मानो कल की बात,
वन को जाते देख हमें जब
आर्त अचेत हुए थे तात ।
अब वह समय निकट ही है जब
अवधि पूर्ण होगी वनकी;
किन्तु प्राप्ति होगी इस जन को
इससे बढ कर किस धन की ?

10

और आर्य्य को ? राज्य भार तो
वे प्रजार्थ ही धारेंगे,
व्यस्त रहेंगे, हम सब को भी
मानों विवश बिसारेंगे !
कर विचार लोकोपकार का
हमें न इससे होगा शोक;
पर अपना हित आप नही क्या
कर सकता है यह नर लोक !

11

मझली मां ने क्या समझा था;
कि मैं राजमाता हूँगी,
निर्वासित कर आ राम को,
अपनी जडें जमा लूँगी ।
चित्रकूट में किन्तु उसे ही
देख स्वयं करुणा थकती,

उसे देखते थे सब, वह थी
निज को ही न देख सकती ।

12

अहो ! राजमातृत्व यही था,
हुए भरत की सब त्यागी ;
पर सौ सौ सम्राटों से भी
हैं सचमुच वे बडभागी ।
एक राज्य का मूढ जगत ने
कितना महा मूल्य रखा ?
हम को तो मानो वन में भी
है विश्वानुकूल्य रखा

13

होता यदि राजत्व मात्र ही
लक्ष्य हमारे जीवन का,
तो क्यों अपने पूर्वज उसको
छोड मार्ग लेते वन का ?
परिवर्तन ही यदिं उन्नति है
तो हम बढते जाते हैं,
किन्तु मुझे तो सीधे-सच्चे,
पूर्व-भाव ही भाते हैं ।।

14

जो हो जहाँ आर्य्य रहते हैं
वहीं राज्य वे करते हैं
उनके शासन में वनचारी
सब स्वच्छन्द बिहरते हैं ।

रखते हैं सयत्न हम पुर में
जिन्हें पिंजरों में कर बन्द;
वे पशुपक्षी भाभी से हैं
हिले यहाँ स्वयमपि सानन्द !

15

करते हैं हम पतित जनों में
बहुधा पशुता का आरोप,
करता है पशुवर्ग किन्तु क्या
निज निसर्ग नियमों का लोप ?
मैं मनुष्यता को सुरत्व की
जननी भी कह सकता हूँ,
किन्तु पतित को पशु कहना भी
कभी नही सह सकता हूँ ॥

शब्दार्थ

चारु = सुन्दर, अवनि = भूमि, अंबर = आकाश, सम्मुख = सामने, निर्भीक-मना = निर्भय, निडर, कुसुमायुध = कामदेव, विराग = विरक्ति, प्रहरी = पहरेदार, कुटीर = झोंपडी, रत = लगा हुआ है, स्वामि-संग = पति के साथ, लाज = सम्मान, अभिमान, विजन देश = निर्जन स्थान, जन-मन = आदमी का मन, मोदमयी = प्रसन्न, निस्तब्ध = निश्चल, गन्धवह = पवन, नियति = प्रकृति, वसुन्धरा = भूमि, रवि = सूर्य, शून्यश्यामतनु = रात्रि ।

***

जयशंकर प्रसाद

[महाकवि जयशंकर प्रसादजी का जन्म काशी के सराय गोवर्द्धन मुहल्ले में एक प्रसिद्ध वैश्यं परिवार में हुआ था। उनके पितामाह शिवरत्न साहु बडे दानी और दयालु थे। उनके पिता देवीप्रसाद बडे विद्या-प्रेमी और साहित्यकारों का आदर करने वाले थे। औपचारिक शिक्षा उन्हें आठवीं कक्षा तक ही मिल पायी। लेकिन स्वाध्याय से उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, उर्दू और फारसी भाषाओं और साहित्यों का गहरा अध्ययन किया। प्रसादजी को पीडा का सामना बराबर करना पडा था। जब वे बारह साल के थे तब प्यारे पिताजी मर गये। जब पन्द्रह साल के हुए तब ममतामयी माता का निधन हो गया। जब वे सत्रह साल के हुए तब उनके बडे भाई की मृत्यु हो गयी। इस छोटी उम्र में ही परिवार का सारा भार प्रसादजी के कोमल कन्धों पर आ गया। आगे एक के बाद एक तीन पत्नियों की वियोग व्यथा अपने अड़तालीस वर्ष के छोटे जीवन में उन्हें सहनी पडी। वे स्वभाव से सरल, उदार, साहसी मृदुभाषी और स्पष्टवादी थे। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास और निबन्ध के क्षेत्रों में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। फिर भी वे मौलिक रूप से कवि थे। पन्द्रह साल की उम्र में ही कविता करने लगे। पहले ब्रजभाषा में लिखते थे। बाद में खडीबोली में लिखने लगे। भारत के प्राचीन साहित्य, पुराण, इतिहास, दर्शन और संस्कृति के विभिन्न प्रसंगों को प्रसादजी ने अपनी नवीन कल्पनाओं से जगमगाया है। उनकी कविताएँ उच्चकोटि की हैं। उनमें गहरा चिन्तन तथा महान दर्शन हैं। अपने जीवन में छायी पीडा ने उन्हें हराया नहीं। उनकी कविता में एक अन्तर्धारा बनकर उनके आँसू जगमगाते अवश्य हैं; लेकिन उन्हें प्रभात-हिमकण सा सुन्दर, सुखद, सुरम्य और प्रसादमय मानकर स्वीकारने को वै तैयार थे। उनके काव्यों में कानन-कुसुम, झरना, लहर, आँसू, प्रेम-पथिक, करुणालय और कामायनी विशेष उल्लेखनीय हैं।

'पुकार' में प्रसादजी की अपनी आत्मा बोल रही है। उनका मन प्यार का प्यासा है। इसलिए सारी प्रकृति ही उन्हें प्यासी लगती है। उन्हें अनुभव होता है कण-कण हर क्षण तडप-तडप कर शिकायत कर रहा है कि मुझे प्यार कभी मिला ही नहीं है। पर पुकार-पुकार कर इस नतीजे पर पहुँचता है कि प्यार पाने की चीज नहीं; देने की है। प्रेम में वियोग और आँसू अनिवार्य हैं।]

पुकार

चिर तृषित कंठ से तृप्ति-विधुर
वह कौन अकिंचन अति आतुर
अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ सदृश
ध्वनि कम्पित करता बार-बार
धीरे से वह उठता पुकार —
मुझको न मिला रे कभी प्यार !

सागर-लहरों-सा आलिङ्गन
निष्फल उठकर गिरता प्रतिदिन;
जल वैभव है सीमा-विहीन,
वह रहा, एक कन को निहार,
धीरे से वह उठता पुकार —
मुझको न मिला रे कभी प्यार !

अकरुण वसुधा से एक झलक
वह स्मित मिलने को रहा ललक
जिसके प्रकाश में सकल कर्म
बनते कोमल उज्ज्वल उदार,
धीरे से वह उठता पुकार —
मुझको न मिला रे कभी प्यार !

फैलाती है जब उषा राग
जग जाता है उसका विराग,
वंचकता, पीड़ा, घृणा, मोह
मिलकर बिखेरते अन्धकार,
धीरे से वह उठता पुकार —
मुझको न मिला रे कभी प्यार !

जीवन-रजनी का अमल इन्दु
न मिला स्वाती का एक बिन्दु,
जो दृश्य सीप में न मोती बन
पूरा कर देता लक्षहार,
धीरे से वह उठता पुकार —
मुझको न मिला रे कभी प्यार !

ढल विरल डालियाँ भरी मुकुल
झुकतीं सौरभ-रस लिये अतुल,
अपने विषाद-विष में मूर्छित,
काँटों से बिंधकर बार-बार;
धीरे से वह उठता पुकार —
मुझको न मिला रे कभी प्यार !

पागल रे ! वह मिलता है कब ?
उसको तो देते ही हैं सब ।
आँसू के कन-कन से गिनकर,
यह विश्व लिये हैं ऋण उधार,
तू क्यों फिर उठता पुकार —
मुझको न मिला रे कभी प्यार !

शब्दार्थ

चिर तृषित = लंबे समय से प्यासा, तृप्ति-विधुर = तृप्ति से वंचित, अतृप्त, अकिंचन् = बिलकुल दरिद्र, आतुर = व्याकुल, अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ सदृश = बहुत छिपे हुए अर्थ के समान, स्मित = मन्दहार, मुस्कान, ललकना = बहुत चाहना, राग = लाल रंग, प्रेम, आसक्ति, विराग = विरक्ति, अमल इन्दु = स्वच्छ चन्द्रमा, दृश्य-सीप = नयन रूपी सीपी, लक्षहार = मोतियों की माला, विरल = जो सघन न हो, मुकुल = खिलती कली, ऋण = कर्ज ।

C C C

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

[विद्रोही और क्रान्तिकारी व्यक्तित्व से संपन्न महान कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी का जन्म बंगाल के मेदिनीपूर जिले के महिषदल में हुआ था । वे अपने पिता के दूसरे विवाह से उत्पन्न इकलौते पुत्र थे । उनके पिता पं. रामसहाय त्रिपाठी उत्तरप्रदेश के उन्नाव जिले के गढाकोला गाँव के निवासी थे । महिषदल में वे नौकरी करते थे । निराला जी की प्रारंभिक शिक्षा वहीं हुई । पर नवीं से आगे पढ़ नहीं सके । उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी और संगीत का गंभीर अध्ययन किया । चौदह साल की उम्र में मनोहरादेवी से उनका विवाह हुआ था । पत्नी की प्रेरणा से ही वे हिन्दी साहित्य की ओर मुडे । सोलह साल की अवस्था से उनके जीवन में विपत्तियाँ टूट पडी । आगे का उनका जीवन सदा संघर्ष में रहा । माता और पिता के असमय मृत्यु से परिवार का पूरा भार उनपर आ पडा । कुछ साल तक वे महिषदल में नौकरी करते रहे । लेकिन 1918 में देशव्यापी इनफ्लुंएजा में उनके परिवार के कई व्यक्तियों की मृत्यु हो गई । उनकी प्यारी पत्नी भी चल बसी । पत्नी की मृत्यु से उनका सर्वस्व लुट गया और उनका जीवन अव्यवस्थित हो गया । पुत्र रामकृष्ण त्रिपाठी और पुत्री सरोज के साथ अपने चाचा के परिवार को पालने का दायित्व भी उनका बन गया । नौकरी छोडकर लखनऊ आ बसे । बाद में अपनी जान से प्यारी बेटी सरोज की मृत्यु ने निरालाजी को सबसे अधिक रुलाया । संघर्ष कि चोट ने उन्हें विद्रोही ओर दुर्दमनीय बना दिया । वे बडे दानशील थे । स्वयं भूखे रहकर भी भूखे-नगों को अपना सर्वस्व दान करते थे । हिन्दी साहित्य में निरालाजी अमर विभूति हैं । वे कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और निबन्धकार हैं । 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'आराधना', 'अर्चना', 'तुलसीदास', 'कुकुरमत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते' आदि उनके प्रमुख काव्य ग्रन्थ हैं ।

'तुम और मैं' अद्वैत दर्शन की काव्यात्मक व्याख्या हैं । जीवात्मा और परमात्मा के पारस्परिक संबन्ध को भान्ति-भान्ति की कल्पनाओं से व्यक्त किया गया है । तुम और मैं अलग-अलग होते हुए अभिन्न हैं । तुम्हारा और मेरा अपनी-अपनी जगह पर अलग-अलग महत्त्व भी है । लेकिन तुम्हारे बिना मेरा अस्तित्व संभव नहीं है । मैं तुम पर पूर्ण रूप से आश्रित और अर्पित हूँ ।]

तुम और मैं

तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचलगति सुर-सरिता ।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास, और मैं कान्त कामिनी कविता ।।

तुम प्रेम — और मैं शान्ति ।
तुम सुरापान-घन अन्धकार, मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति ।।
तुम दिनकर के खर-किरण जाल, मैं सरसिज की मुसकान ।
तुम वर्षों के बीते वियोग, मै हूँ पिछली पहचान ।।

तुम योग — और मैं सिद्धि ।
तुम हो रागानुग निश्छल तप; मैं सुचिता सरल समृद्धि ।।
तुम मृदु मानस के भाव; और मैं मनोरंजिनी भाषा ।
तुम नन्दन-वन घन-विटप, और मैं सुख-शीतल तल शाखा ।।

तुम प्राण —और मैं काया ।
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म, मैं मनोमोहिनी माया ।।
तुम प्रेममयी के कण्ठहार, मैं वेणी काल-नागिनी ।
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार, मैं व्याकुल विरह रागिनी ।।

तुम पथ हो ; मैं हूँ रेणु ।
तुम हो राधा के मन-मोहन, मैं उन अधरों की वेणु ।।
तुम पथिक हृदय की श्रान्ति, और मैं बाट जोहती आशा ।
तुम भव-सागर दुस्तार, पार जाने की मैं अभिलाषा ।।

तुम नभ हो, मैं नीलिमा ।
तुम शरद-सुधाकर कला-हास, मैं हूँ निशीथ मधुरिमा ।।
तुम गंध-कुसुम कोमल पराग, मैं मृदुगति मलय-समीर ।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति-प्रेम-जंजीर ।।

तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति ।
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र, मैं सीता अचला भक्ति ।।
तुम आशा के मधुमास, और मैं पिक-कल-कूजन-तान ।
तुम मदन-पंचशर हस्त और मैं हूँ मुग्धा अनजान ।।

तुम अम्बर, मैं दिग्वसना !
तुम चित्रकार घन-पटल श्याम, मैं तडित्तूलिका-रचना ।।
तुम रण-ताण्डव उन्माद-नृत्य, मैं मुखर मधुर-नूपुर-ध्वनि ।
तुम नाद-वेद-ओंकार-सार, मैं कवि श्रृंगार-शिरोमणि ।।

तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति ।
तुम कुन्द-इन्दु अरविन्द शुभ्र, तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति ।।

शब्दार्थ

तुंग = ऊँचा, श्रृंग = चोटी, विमल = स्वच्छ, पवित्र, कान्त = आकर्षक, कामिनी = अभिलषणीय, दिनकर = सूर्य, खर = तीक्ष्ण, सरसिज = कमल, वियोग = विरह, धन-विटप = घने पत्ते और शाखाओं से युक्त बडा वृक्ष, कण्ठहार = गले की माला, रेणु = धूलि, वेणु = मुरली, शरद-सुधाकर = शरद काल का चन्द्रमा, कला-हास = अपनी कला रूपी हास से युक्त, निशीथ = रात्रि, मदन = कामदेव, पंचशर-हस्त = हाथों में पाँचों बाण लिए हुए, अम्बर = आकाश, दिग्वसना = दिशाएँ जिसके वस्त्र हों, तडित्तूलिका = बिजली रूपी तूलिका, अरविन्द = कमल ।

***

सुमित्रानन्दन पंत

[हिन्दी के सुकुमार कवि पंत जी का जन्म 1900 ई. को उत्तरप्रदेश के अलमोडा नामक प्रकृति रमणीय प्रदेश में हुआ । जन्म के कुछ घंटे बाद ही माँ स्वर्ग सिधारी । वे प्रकृति की गोद में पले । छोटी उम्र में ही कविताएँ लिख कर उन्होंने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया । इन्टरमीडिएट तक उन्होंने शिक्षा पायी । सन् 1912 में जब असहयोग आन्दोलन छिडा तब उन्होंने पढाई छोड दी ।

पंत मूलतः प्रकृति और सौंदर्य के कवि है । उनकी साहित्यिक धारणाएँ युग चेतना के अनुरूप सदा बदलती रहीं । छायावाद, प्रगतिवाद, गाँधीवाद, प्रयोगवाद, अरविंद दर्शन आदि से समय-समय पर वे प्रभावित रहे । अतः उनकी रचनाएँ आधुनिक हिन्दी कविता को पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाली हैं ।

'ग्रंथि', 'वीणा', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'चिदंबरा', 'लोकायतन', आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं । चिदंबरा पर उनको भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला । भारत सरकार ने उनको 'पद्‌मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया । उनका निधन 1977 ई. में हुआ ।

पंतजी कोमल कान्त पदावली केलिए विख्यात हैं । खडी बोली कविता को सरसता और मधुरता प्रदान करने का श्रेय उनका है । उनकी भाषा में संस्कृततत्सम शब्दों का आधिक्य है । उनकी भाषा चित्रमयी, अलंकृत तथा संगीतमयी है । सुन्दर प्रतीक योजना भी पंतजी की भाषा की खूबी है ।

प्रस्तुत कविता 'चींटी' में कविवर पंतजी सृष्टि की लघुतम प्राणी चींटी के सुव्यवस्थित सामाजिक जीवन, एकता, संगठन, अनुशासन, परिश्रमशीलता एवं सुनागरिकता का वर्णन करते हैं । काली-काली, छोटी-छोटी व नगण्य चींटी की कर्मनिष्ठा, प्राण शक्ति तथा सक्रियता सराहनीय है । गाय चराना, धूप खिलाना, बच्चों की देखभाल करना, अस्तित्व केलिए लडना, सैन्य संचालन करना आदि अनुपम है । उसके सुन्दर घर को वल्मीक कहते है। उसके अन्दर दुर्ग, नगर, घर, आँगन, गोशाला, अन्न भंडार, विस्तृत राजमार्ग और कई जनपथ हैं । उसकी निर्माण कला बेजोड है । सृष्टि का श्रृंगार मानव अपनी सभ्यता तथा संस्कृति पर डींग हाँका करते हैं । लेकिन तिल जैसी छोटी और अणु समान चींटी की निर्माण कला-कुशलता अत्याधुनिक शिल्पि या एंजिनियर को भी मात करने वाली है । आठों पहर रचनात्मक कार्य में अक्षीण लगे रहने वाली चींटी में तथा सुख भोग लिप्सा में आकण्ठ निमग्न

होकर जड़ तुल्य जीवन बिताने वाले आधुनिक मानव में आकाश-पाताल का अंतर है । कवि के स्वरों में स्वर मिलाकर हमें भी यही कहना पडता है कि जीवन की अक्षय चिनगारी का नाम चींटी है ।]

चींटी

चींटी को देखा ?
वह सरल, विरल, काली रेखा
तम के तागे सी जो हिल डुल
चलती लघुपद पल-पल मिल जुल
वह है पिपीलिका पांति !
देखो ना, किस भांति
काम करती वह संतत !
कन-कन कनके चुनती अविरत !

गाय चराती,
धूप खिलाती,
बच्चों की निगरानी करती,
लड़ती, अरि से तनिक न डरती,
दल के दल सेना संवारती,
घर, आंगन, जनपथ बुहारती !

देखो वह वल्मीकि सुघर,
उसके भीतर हैं दुर्ग, नगर !
अद्भुत उसकी निर्माण कला,
कोई शिल्पी क्या कहे भला !
उसमें हैं सौध, धाम, जनपथ,
आंगन, गो-गृह भंडार अकथ,
चींटी है प्राणी सामाजिक,
वह श्रमजीवी, वह सुनागरिक !

देखा चींटी को ?
उसके जी को ?
भूरे बालों की सी कतरन
छिपा नहीं उसका छोटापन,
वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय
विचरण करती, श्रम से तन्मय,
वह जीवन की चिनगी अक्षय !

शब्दार्थ

विरल = छितराई हुई, तागा = धागा, डोरी, पिपीलिका = चींटी, पांति = पंक्ति, संतत = सतत, सदा, अविरत = अविराम, लगातार, निगरानी करना = देखभाल करना, वल्मीकि = दीमक, चिनगी = चिनगारी ।

***

सुभद्राकुमारी चौहान

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म प्रयाग के निहालपूर में हुआ। पिता डॉ. रामनाथसिंह थे। प्रयाग में ही उन्होंने शिक्षा पायी। उनके पति ठाकुर लक्ष्मणसिंह नामी वकील थे। बचपन में ही उनकी कवि प्रतिभा प्रखर थी। पन्द्रह वर्ष की आयु में उन्होंने प्रथम काव्य रचना की। वे आदर्श गृहिणी थीं। पारिवारिक जीवन के मनोरम चित्रों से उनकी कविताएं संपन्न हैं। राष्ट्रीय भावों की मधुर गायिका के रूप में सुभद्राजी सुप्रसिद्ध हैं। अपनी ओजस्वी रचनाओं से उन्होंने अस्वतंत्र भारत के असंख्य आलसी युवकों को जगाया है। स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लेने से उन्हें दो बार जेल भी जाना पडा था। अनुभूत विषयों को वाणी देने से उनकी कृतियों में स्वाभाविकता और तन्मयता के साथ सरसता और सरलता भी स्वयमेव आयी हैं। जिस खूबी से वे कवितायें करती थीं उसी खूबी से कहानियाँ भी लिखती थीं। दोनों पर उन्हें सेकसेरिय़ा पुरस्कार मिले हैं। 'बिखरे मोती' और 'उन्मादिनी' उनकी कहानियों का संग्रह है। 'मुकुल' और 'झाँसी की रानी' उनकी अनुपम काव्य कृतियाँ हैं। 'झाँसी की रानी' राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत लोकप्रिय रचना है। इसमें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीर गाथा का ओजस्वी तथा हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। जन-जन के मन में उस वीरांगना की अमर कहानी का असर डालने में उनकी वरद लेखनी सोलहों आने सफल हुई है। वीर रस के साथ ही श्रृंगार और वात्सल्य रस के चित्रण में भी उन्हें असीम सफलता मिली है। नारी हृदय की मधुरिमा और मृदुता उनकी रचनाओं में साकार हो उठी हैं। 'मेरा बचपन' आदि कविताओं में उन्होंने मातृत्व का महनीय चित्र उपस्थित किया है। राष्ट्रीय और सामाजिक कार्यों में सदा संलग्न रहने के कारण उनकी रचनाओं में भी उसका सशक्त प्रभाव पडा है। वे मध्यप्रदेश असेंब्ली की सदस्या रहीं। अतः लोगों से हिल-मिल कर रहने का अवसर उन्हें यथेष्ट मिला है। उनकी रचनाओं में देश-प्रेम, त्याग, नारी हृदय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि विशेष रूप से मिलते हैं।

सुभद्राकुमारी जी की भाषा साहित्यिक खडीबोली है। उनके काव्यों में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों का त्रिवेणी संगम विषयानुसार हुआ है। सरलता, सुबोधता एवं अकृत्रिमता उनकी भाषा की निजी विशेषतायें हैं। उनकी कविताएँ कंठस्थ कर लेने के लिए महाभारत मचाने की जरूरत नहीं। एक बार की पढाई से ही सहृदयों के अधर पर अनजाने थिरक उठती है। अलंकारों की जादू उनकी कविताओं में कहीं भी नहीं होगी। भाषा की सरलता, शैली की सहजता तथा भावों की उदारता पाठकों को रस विभोर बनाने में समर्थ हैं।

सन 1948 ई. में एक कार दुर्घटना में उनका दुखद देहान्त हुआ और हिन्दी साहित्य एक मौलिक प्रतिभा से सदा-सदा केलिए वंचित हुआ।]

कदम्ब का पेड

यह कदम्ब का पेड अगर माँ, होता यमुना तीरे,
मैं भी उस पर बैठ कन्हैया बनता धीरे-धीरे ।
ले देती यदि मुझे बाँसुरी तुम दो-पैसेवाली,
किसी तरह नीचे हो जाती यह कदम्ब की डाली ।।

तुम्हें नहीं कुछ कहता, पर में चुपके आता,
उस नीची डाली से अम्मा, ऊँचे पर चढ जाता ।
वहीं बैठ फिर बडे मजे में बाँसुरी बजाता,
'अम्मा-अम्मा' कह वंशी के स्वर में तुम्हें बुलाता ।

सुन मेरी वंशी को माँ, तुम इतनी खुश हो जाती ,
मुझे देखने काम छोडकर तुम बाहर तक आतीं ।
तुमको आता देख बाँसुरी रख मैं चुप हो जाता,
पत्तों में छिपकर मैं धीरे से फिर बाँसुरी बजाता ।।

तुम हो चकित देखती चारों ओर न मुझको पाती,
तब व्याकुल-सी हो कदम्ब के नीचे तक आ जातीं ।
पत्तों का मर्मर स्वर सुन जब ऊपर आँख उठाती,
मुझको ऊपर चढा देखकर कितनी घबरा जाती ।।

गुस्सा होकर मुझे डाँटती, कहतीं नीचे आ जा,
पर जब मैं न उतरता हँसकर कहतीं —"मुन्ना राजा"
नीचे उतरो मेरे भैया ! तुम्हें मिठाई दूँगी,
नये खिलौने, माखन-मिश्री, दूध मलाई दूँगी ।

मैं हँसकर सबसे ऊपर की टहनी पर चढ जाता,
एक बार 'माँ' कह, पत्तों में वहीं कहीं छिप जाता ।
बहुत बुलाने पर भी माँ, जब मैं न उतर कर आता,
तब माँ, माँ का हृदय तुम्हारा बहुत विकल हो जाता ।।

तुम अंचल पसार कर अम्माँ, वहीं पेड के नीचे,
ईश्वर से कुछ विनती करती, बैठती आँखें मींचे ।
तुम्हें ध्यान में लगी देख, मैं धीरे-धीरे आता,
और तुम्हारे फैले अंचल के नीचे छिप जाता ।।

तुम घबरा कर आँख खोलतीं, फिर भी खुश हो जाती,
जब अपने मुन्ने राजा को गोदी ही में पातीं ।
इसी तरह कुछ खेला करते हम-तुम धीरे,
माँ, कदम्ब का पेड अगर होता यमुना तीरे ।।

शब्दार्थ

कन्हैया = कृष्ण, वंशी = बाँसुरी, मुरली, टहनी = डाली, शाखा, अंचल पसारना = विनयपूर्वक माँगना ।

***

हरीवंशराय बच्चन

[श्री हरिवंशराय बच्चन का जन्म सन् 1907 में इलाहाबाद में हुआ था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.ए. किया। उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि भी ली। दैनिक 'पयोनियर' में जिला कचहरियों का संवाददाता, दैनिक 'अभ्युदय' के सम्पादकीय विभाग के कर्मचारी, इलाहाबाद के अग्रवाल विद्यालय के अध्यापक आदि पदों पर रहकर वे सन् 1941 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। आप कुछ समय आकाशवाणी, इलाहाबाद के प्रोड्यूसर और कुछ समय विदेश मन्त्रालय दिल्ली में हिन्दी विशेषज्ञ रहे। उन्होंने सन् 1966 में सरकारी सेवा से अवकाश ग्रहण किया।

हिन्दी कविता में 'मधुशाला' की रचना के साथ आप का प्रवेश हुआ। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं पर छायावाद का पर्याप्त प्रभाव है। उनकी कविता विद्रोह और नवजीवन की भावनाओं का सन्देश लिए हुई थी। उनकी रचनाओं में जीवन के सुख और सन्तोष तथा दुःख और निराशा का सफल स्वाभाविक और मार्मिक चित्रण मिलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी कविता में असाधारण माधुर्य और सहज भाव का समावेश किया है।

मधुशाला, मधुकलश, मधुबाला, निशानिमन्त्रण, एकान्त संगीत, हलाहल, मिलनयामिनी, बंगाल का काल आदि आप की प्रमुख रचनायें हैं। बच्चन जी को कई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुके हैं।]

इन्सान और कुत्ते

शहर की मैली-किचैली
और बदबूदार गलियों-बस्तियों से
दूर, सब से अलग,
चौडी, खुली सडकें
सिविल लाइन कही जातीं;
और इन पर बने बँगले,
अलग बिल्कुल दुसरे-से,

व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य-सत्ता के,
इकाई के किले हैं;
और जो इनके निवासी,
आत्म-सीमित-संभरित, संकीर्ण
अपने आप में ही बंद,
बुसती, विकृत
पच्छिम की मशीनी
सभ्यता के पुतले हैं ।
सात बजकर दस मिनट पर चाय पीते,
वक्त छोटी हाजिरी का आठ पचपन,
नौ छियालिस छोडते घर,
ठीक दस दफ्तर पहुँचते,
पाँच पैंतिस लौटते हैं ;
घडी जो चाहे मिला ले -
चाय पीकर क्लब पहुँचते,
पेग चढाते, खेलते ब्रिज,
लौटकर घर डिनर खाते
और सिरहाने, अलार्म घडी लगाकर
लेट जाते, ठीक ग्यारह बजे,
मिनट न कम, न ज्यादा ।
ये किसी से दोस्ती या दुश्मनी
रखते नहीं,
संपृक्त अपने से, विरक्त समस्त जग से;
यदि पडोसी के यहाँ हो मौत-चोरी,
तो इन्हें लगता पता अखबार पढ़कर,
हर्ष और विवाद औ' संवेदना के
भिक्षुकों को
ये फटकने ही नहीं देते हृदय के देहरी पर,
बिना परिचय के किसी से बोलना मिलना
महान असभ्यता है,
शान के औ' मान के विपरीत भी है ।

छः महीने से बराबर देखता हूँ
इस तरह के दो नमूने
घूमने जाते सुबह को,
साथ जाते दुम हिलाते हुए कुत्ते,
कीमती, नस्ली, बताते
हैसियत भी मालिकों की ।
वाकाया यह है कि इनके लिए कुत्ते
दुर्निवार विभाव-स्रावों की निकासी
की सुपासी नालियाँ हैं;
सेफटी का वाल्व जिनको बोलते हैं ।
इन्हें दुलराने-मल्हाने से
किसी को प्यार करने की जरूरत
रफा होती रहे,
बचते ये रहें अभिव्यक्तियों से
जिन्हें कहते व्यक्ति की कमजोरियाँ ये ।
एक आता है उधर से,
एक जाता है इधर से,
पास होकर निकल जाते
कौन निकलता पास से इनको पता क्या -
कांट, आइंस्टीन की भी
देखती-अनदेखती आँखें
अगर इनके दृगों को
देख लेतीं,
चपल अपने को बतातीं ।
ठोंक जूतों की ध्वनित-प्रतिध्वनित होती -
'टुम अगर शाहब,
नई अम भी अशाहब !'
किन्तु कुत्ते
दूर से ही देख कुत्ते को
उमंग-भरे, उछलते-कूदते

आ पास जाते,
सूँघते हर अंग,
मुँह से मुँह मिलाते,
गंध-गति की
रहस भाषा में
प्रणाम-जुहार करते,
'हाल कहते पूछते,
घर में कुशल सब
बाल-बच्चे-तो मजे में ?
शाम खाना क्या मिला था ?
रात खटका तो नहीं, ज्यादा हुआ था ?
और झगडा तो नहीं कोई ठना था
बीच मालिक-मालकिन के ?
नौकरों के बीच खटपट तो नहीं थी ?
फिर झपटते हुए चक्कर काट
सहसा बैठ-उठकर
कभी ऊपर, कभी नीचे से,
छलाँग, फलाँग,
तन को झाड-झहरा,
व्यक्त करते हैं कि सब
आनन्दमय प्रभु की दया है ।
तब अचानक
दो दिशाओं से
कडे अधिकारसूचक, भर्त्सने के
शब्द आते
'कम हियर यू डैम व्हिस्की !'
'कम हियर यू डेविल फ्रिस्की !'
(श्वान भी तो मानता है
रोब अंग्रेजी जबां का ।)
और व्हिस्की और फ्रिस्की

सोचते, आश्चर्य करते,
'क्या किया हमने कि मालिक
यों बिगडते ।'
दुम दबाये मालिकों के साथ जाते -
फेर कर मुँह कभी पीछे देखते भी बेबसी से ।
औ' नहीं इन बेहयाओं को अखरती,
खान की यह खानियत
इंसान की इंसानियत पर व्यंग्य करती ।

शब्दार्थ

छोटी हाजिरी = नाश्ता, सिरहाने = चारपाई में सिर की ओर का भाग, संपृक्त = भरा हुआ, फटकना = पहुँचाना, दुम = पूँछ, नस्ली = वंश से सम्बन्धित, हैसियत = प्रतिष्ठा, वाकाया = वृत्तान्त, स्राव = स्रवण, निकासी = निकलने की क्रिया, सुपासी = सुख देनेवाला, नली = नाली, दुलराना = प्यार करना, मल्हाना = प्यार से सहलाना, ठोंक = आघात, जुहार = अभिनन्दन, फलाँग = कूदना, उछलकर चलना, बेहयाई = निर्लज्ञता ।

***

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

[आधुनिक हिन्दी साहित्य के अनमोल रत्नों में एक हैं सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' । वे मूलतः कवि हैं । लेकिन गंभीर चिन्तक, उपन्यासकार, कहानीकार, पत्रकार, चित्रकार, कुशल शिल्पी आदि के रूपों में भी उन्होंने ख्याति पायी है । वे युगस्रष्टा हैं । सन् 1940 से 1960 तक के दो दशक अज्ञेय युग माना जाता है । उनका व्यक्तित्व सदा विकासशील और ऊर्ध्वमुखी थी । एक मामूली कवि के स्तर से शरू होकर उनकी काव्य-यात्रा ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता शक्तिशाली कवित्व के स्तर तक पहुँचती हैं । अज्ञेयजी का रचना-संसार अत्यन्त विशाल है । प्रयोगवादी नयी कविता के वे अगुआ कवि थे । कविता में भाव, भाषा, प्रयोग, अलंकार आदि की परंपराओं को उन्होंने तोडा है । छंद, अलंकार, अदि सभी बन्धनों से कविता को मुक्त करके उसके स्वरूप को बदलने और सुधारने के लिए उन्होंने सप्तकों का एक क्रम चलाया । तारसप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक और चौथा सप्तक के प्रकाशन से नयी कविता की धूम मच गयी । मग्नदूत, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, इन्द्रधनुष, रौंदे हुए, कितनी नावों पर कितनी बार, सागर मुद्रा और अरी ओ करुणा प्रभामय उनके काव्य संग्रह हैं । विपथगा, परंपरा, कोठरी की बात, शरणार्थी आदि उनकी कहानियों के संकलन हैं । शेखर - एक जीवनी (दो भाग), नदी के द्वीप एवं अपने-अपने अजनबी उनके उपन्यास हैं । अरे यायावर रहेगा याद उनका विख्यात यात्रा-विवरण है ।

'सम्राज्ञी का नैवेद्य-दान' अज्ञेयजी के 'अरी ओ करुणा प्रभामय' नामक काव्य-संकलन की एक मनोरम कविता है । पुरानी राजधानी नारा के बौद्ध-मन्दिर में पूजा केलिए खाली हाथ पहुँची हुई जापान की साम्राज्ञी कोमियो के भावों में भगवान बुद्ध की करुणा एवं अहिंसा का प्रसार है । पूजा के नाम पर फूलों के सुन्दर अस्तित्व को मिटाना नहीं चाहिए । जीवन का प्याला जहाँ-कहीं भी सुख और आनन्द से भरा है, वहाँ उसे देवार्जित मानना ही असली पूजा है । सोना, चाँदी और अन्य वस्तुओं के नैवेद्य-समर्पण के आडंबरों का नाम पूजा या भक्ति नहीं है । व्यापक दया एवं सहानुभूति में पूजा निहित है ।]

सम्राज्ञी का नैवेद्य-दान

हे महाबुद्ध !
मैं मन्दिर में आयी हूँ
रीते हाथ :
फूल मैं ला न सकी ।
    औरों का संग्रह
    तेरे योग्य न होता ।

और जो मुझे सुनाती
जीवन के विह्वल सुख-क्षण का गीत —
खोलती रूप-जगत् के द्वार जहाँ
तेरी करुणा
बुनती रहती है
भव के सपनों, क्षण के आनंदों के
रहः सूत्र अविराम —
उस भोली मुग्धा को
कँपती
डाली से विलगा न सकी ।
जो कली खिलेगी जहाँ, खिली,
जो फूल जहाँ है,
जो भी सुख
जिस भी डाली पर
हुआ पल्लवित, पुलकित,
मैं उसे वहीं पर
अक्षत, अनाघ्रात, अस्पृष्ट, अनाविल,
हे महाबुद्ध ?
अर्पित करती हूँ तुझे ।
वहीं-वहीं प्रत्येक भरा प्याला जीवन का,
वहीं-वहीं नैवेद्य चढा
अपने सुन्दर आनन्द-निमिष का,
तेरा हो,
हे विगागत के, वर्तमान के पद्मकोश !
हे महाबुद्ध !

शब्दार्थ

रीते हाथ = खाली हाथ, रूप-जगत = सौन्दर्य लोग, रहःसूत्र = रहस्य सूत्र, निगूढ़ प्रेम तत्व का सूत्र, मुग्धा = सरल युवा नायिका, विलगा न सकी = अलग न करा सकी, अक्षत = क्षत का विलोम शब्द, अनाघ्रात = किसी के द्वारा न सूँघा हुआ, अनादिल = निर्मल, स्वच्छ, अस्पृष्ट = अछूता, विगतागत = भूत और भविष्य, पद्म कोश = कमल रूपी सुन्दर भण्डार, कमलाकर ।

***

नागार्जुन

[नागार्जुन के बचपन का नाम वैद्यनाथमिश्र था । ननिहाल के शतलखा गाँव में उनका जन्म हुआ था । बचपन में वे अपनी धरती और खेती में ही मन लगाते थे । बाद में वे संस्कृत का विस्तृत अध्ययन करके साहित्याचार्य बन गए । छोटी अवस्था से ही उन्हें कविता करने का शौक था । उन्होंने देश-विदेश का भ्रमण किया था । राहुल सांकृत्यायन जी के साथ लंका जाने पर वे बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए और उन्होंने नागार्जुन नाम स्वीकार किया । उन्होंने हिन्दी और मैथली में अनेक रचनाएं की । मुख्य कृतियाँ—युगधारा, प्यासी पथराई आंखें, शतरंगे पंखोवाली, खून और शोले, प्रेत का बयान, चना और गरम आदि छोटी कविताएं और भस्मांकुर खण्ड काव्य हैं । नागार्जुन की रचनाएं प्रकृति, सामाजिक, यथार्थ और देश प्रेम की भावनाओं से पूर्ण हैं ।

प्रस्तुत कविता 'प्रेत का बयान' स्वाधीन भारत के अभावग्रसित अध्यापकों की दुस्थिति पर नागार्जुन का व्यंग्य है । अध्यापक के प्रेत तथा यमराज का यह संवाद अत्यंत, रोचक एवं हृदयहारी है । स्वतंत्र भारत के शासकों तथा देशसेवकों का ध्यान कोरे यथार्थ की ओर आकर्षित करने में कवि पूर्णतः सफल हुए हैं ?]

प्रेत का बयान

'ओ रे प्रेत —
कड़ककर बोले नरक के मालिक यमराज
''सच सच बतला !
कैसे मरा तू ?
भूख से, अकाल से ?
बुखार, कालाजार से ?
पेचिश, बदहजमी, प्लेग, महामारी से ?
कैसे मरा तू, सच सच बतला !''

खड़ खड़ खड़ खड़ हड़ हड़ हड़
काँपा कुछ हाडों का मानवीय ढाँचा

नचा कर लम्बी चमचों - सा पंचगुरा हाथ
रूखी - पतली किट-किट आवाज़ में
प्रेत ने जवाब दिया
''महाराज
सच सच कहूँगा
झूठ नहीं बोलूँगा
अब हम गुलाम नहीं
नागरिक हैं हम स्वाधीन भारत के
पूर्णिया जिला है सूबा बिहार के सिबान पर
थाना धमदाहा
बस्ती रुपउली
जात का कायस्थ
उमर कुछ अधिक पचपन साल की
पेशा से प्रायमरी स्कूल का मास्टर था
तनखा थी तीस रूपैया, सो भी नहीं मिली,
मुश्किल से काटे हैं ।
एक नहीं दो नहीं नौ नौ महीने ।
घरनी थी, माँ थी, बच्चे थे चार
आ चुके हैं वे भी दया सागर, करुणा के अवतार !
आप ही की छाया में
मैं ही बाकी
क्योंकि करमों की पत्तियाँ अभी कुछ शेष थी
हमारे अपने पुस्तैनी पोखर में
मनोवल शेष था सुखे शरीर में ....''

''अरे वाह ....''
भभाकर हँस पड़ा नरक का राजा
दमक उठी झालरें कम्पमान सिर के मुकुट की
फर्श पर ठोककर सुनहला लौहदंड
अविश्वास की हँसी हँसा दण्डपाणि महाकाल ।
''बड़े अच्छे मास्टर हो !

आये हो मुझको भी पढ़ाने ! !
मैं भी बच्चा हूँ ....
वाह भई, वाह !
तो तुम भूख से नहीं मरे ?

हद से ज्यादा डालकर जोर
होकर कठोर
प्रेत फिर बोला —
''अचरज की बात है
यकीन नहीं करते आप क्यों मेरा
कीजिये न कीजिये न आप चाहे विश्वास
साक्षी है धरती, साक्षी है आकाश
और, और , और; और, और भले
नाना प्रकार की व्याधियाँ हो भारत में
किन्तु —'
उठाकर दोनों बाँह
किट किट करने लगा प्रेत
''किन्तु
भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमें
सावधान महाराज
नाम नहीं लीजियेगा
हमारे समक्ष फिर कभी भूख का ! !''
निकल गया भाव आवेश का
तनन्तर शांत-स्तंभित स्वर में प्रेत बोला
''जहाँ तक मेरा अपना संबन्ध है
सुनिए महाराज
तनिक भी पीर नहीं
दुःख नहीं दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सह न सही आँत जब पेचिश का हमला ।

सुनकर दहाड़
स्वाधीन भारत के
भुखमरे, स्वाभिमानी, सुशिक्षक प्रेत की
रह गये निरुत्तर
महामहिम नरकेश्वर ।

शब्दार्थ

कडक कर बोलना = कठोर शब्द में बोलना, कालाजार = मृत्यु कारक बीमारी, घरनी = घरवाली, बीवी, पुस्तैनी = परम्परागत, दहाड = गरजना ।

***

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

[सक्सेना का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में सन् 1927 में हुआ । इनके पिता एक अध्यापक थे । घर में आर्थिक संघर्ष के बीच से इन्हें गुजरना पडा । इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. किया । पहले अध्यापक बने, फिर पाँच वर्ष क्लर्की की । कुछ वर्ष आकाशवाणी दिल्ली में विभिन्न पदों पर कार्य किया ।

सक्सेना जी की कविता एक ओर निजी सुख-दुख को व्यक्त करती है तो दूसरी ओर जन-जीवन के यथार्थ का खुलकर चित्रण करती है । लोकोन्मुखता और व्यक्तिगत मुखर चिन्तन को व्यंग्य की प्रभावपूर्ण भाषा में प्रकट करना उनको विशेष प्रिय रहा है । इनकी कविताओं में अस्तित्वबोध सत्य का अन्वेषण दर्द की मार्जन-शक्ति जीवन को सहन करने की बात, जीवन की विवशता आदि के माध्यम से आधुनिकता को समसामयिकता के स्तर पर संवेदित किया गया है । ग्राम्य जीवन के प्रति लगाव उनकी कविता की एक मुख्य प्रवृत्ति है। ग्राम्य जीवन के अभाव, दुःख-दैन्य और पीड़ा का यथार्थ चित्रण उनके काव्य में मिलता है । अपनी कुछ कविताओं में ग्राम और महानगर के द्वन्द्व को उभारने का उन्होंने प्रयास किया है। उनकी कुछ कविताओं में वर्तमान जीवन की अव्यवस्था, राजनीतिक पाखण्ड और सत्ताधारी वर्ण की स्वार्थलिप्सा का तीखा चित्रण मिलता है । 'खाली समय में' में कवि की व्यंग्यात्मक संवेदना को मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है । आज के जीवन की असंगतियों तथा विसंगतियों को अभिव्यक्ति देने केलिए व्यंग्य एक सशक्त साधन है । उनकी भाषा में व्यंजना की नई शक्ति है, नये बिम्बों को योजना है ।]

खाली समय में

बैठकर ब्लेड से नाखून काटें,
बढी हुई दाढी में बालों के बीच की
खाली जगह छाँटें,
सर खुजलायें, जम्हुआयें,
कभी धूप में आयें,
कभी छाह में आयें,
इधर-उधर लेटें,
हाथ-पैर फैलायें,

करवटें बदलें,
दायें-बायें,
खाली कागज़ पर कलम से
भोंडी नाक, गोल आँख टेढे मुँह
की तस्वीरें खींचे,
बार-बार मींचे,
खाँसें, खखारें,
थोडा बहुत गुनगुनायें,
भोंडी आवाज में
अखबार की खबरें गायें,
तरह-तरह की आवाज़
गले से निकालें
अपनी हथेली की रेखायें
देखें-भालें,
गालियाँ दे-दे कर मक्खियाँ उडायें,
आँगन के कौओं को भाषण पिलायें,
कुत्ते के पिल्ले से हाल-चाल पूछें,
चित्रों में लडकियों की बनायें मूँछें,
धूप पर राय दें, हवा की वकालते करें,
दुमड-दुमड तकिये की जो कहिए हालत करें,
खाली समय में भी बहुत-सा काम है
किस्मत में भला कहाँ लिखा आराम है ।

शब्दार्थ

छाँटना = मलिन वस्तु निकाल देना, खुजलाना = नख से घिसना, जम्हुआना = जंभाई लेना, घूप = सूर्य का प्रकाश, छाह = छाया, करवटें बदलना = नींद न आने पर बार-बार दिशा बदल कर सोना, भोंडी = कुरूप, मींचना = आँख बन्द करना, खाँसना = खखराना, गले में अटके हुए कफ को निकालने के लिए हवा को शब्द से साथ बाहर फेंकना, राय = सुझाव, किस्मत = भाग्य ।

***

गोपाल दास 'नीरज'

[गोपाल दास सक्सेना 'नीरज' का जन्म सन् 1926 में पुरावली, जिला इटावा (उ.प्र.) में हुआ। 'नीरज' जी ने साधारण कविताओं की अपेक्षा गीत ही अधिक लिखे हैं। पिछले दो दशकों से गीत की विद्या को एक नई दिशा तथा नया अर्थ प्रदान करने वाले 'नीरज' का नाम गीत का पर्याय बन गया है। कवि सम्मेलनों का यह गायक-कवि 'गीति-काव्य का श्रृंगार' माना जाता है। अपने सुललित गीतों के कारण 'नीरज' जी सर्वमान्य हैं। उनकी कविता वह सब दे सकती है जो मनुष्य का हृदय माँग रहा है। उनके काव्य चेतना प्रतिवादी है। उन्होंने समाज में होने वाले शोषण, अत्याचार, अनाचार की कटु आलोचना की है। उनके अनुसार प्रेम (विश्वप्रेम - मानव प्रेम) ही गति है। चिति (स्थिति), गति और इति ये उनके अनुमार तीन सत्य हैं। भूख ही उनका चौथा सत्य है। वे अपनी कविताओं में जन-रुचि और जनभाषा का प्रयोग करते हैं। वे पूँजीवादी ताकतों के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करनेवाले कवियों में अग्रणी हैं। संघर्ष, अन्तर्ध्वनि, विभावरी, प्राणगीत, मृत्युगीत आदि उनकी प्रमुख रचनायें हैं।]

आधुनिक युग

पैसे की पहचान कहाँ, इनसान की कीमत कोई नहीं,
बचके निकल जा, इस बस्ती में करता मुहब्बत कोई नहीं

हीरा तूने समझ लिया जो, तो अरे काँच का टुकडा है,
प्यारे खुश्बू ढूँढ रहा तू जिनमें वो फूल हैं सारे कागज़ के,

कपडे शरीफोंवाले सबके, पर दिलों में शराफत कोई नहीं,
बीबी, बहन, माँ, बेटी, न कोई, पैसे का सब रिश्ता है,

आँख का आँसू, खून जिगर का, मिट्टी से भी सस्ता है,
सब को तेरी जेब से नाता, तेरी जरूरत कोई नहीं,

शेख गुनाहों की मण्डी, मीठा ज़हर ज़वानी है,
कहते हैं ईमान जिसे वो कुछ नोटों की कहानी है,

भूख है मजहब इस दुनिया का और हकीकत कुछ नहीं,
ज़िन्दगी है क्या चीज़ यहाँ, मत पूछ आँख भर आती है,

रात में करती ब्याह कली जो, वो बेवा सुबह हो जाती है,
औरत बनकर इस कूचे में, रहती औरत कोई नहीं ।

शब्दार्थ

इनसान = मनुष्य, बस्ती = जनपद, काँच = शीशा, खुशबू = सुगन्ध, शरीफों वाले = सज्जनोचित, शराफत = सज्जनता, रिश्ता = सम्बन्ध, जिगर = कलेजा, शोख = धृष्ट, गुनाह = अपराध, मण्डी = बाजार, जहर = विष, ईमान = सत्य, विश्वास, मजहब = धार्मिक सम्प्रदाय, हकीकत = सच्चाई, आँख भर आना = नेत्र सजल होना, बेवा = विधवा, कूचा = संकरी गली ।

***

गिरिजा कुमार माथुर

[गिरिजा कुमार माथुर का जन्म मध्यप्रदेश के अशोक नगर में सन् 1919 में हुआ। आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. तथा एल.एल.बी. की परीक्षायें पास की। सन् 1943 के बाद वे आकाशवाणी से संबद्ध रहे। अब तक वे समूचा यूरोप घूम चुके हैं।

1941 में आप की पहली कृति 'मंजीर' प्रकाशित हुई। प्रगीतात्मकता तथा संगीतात्मकता आप की गीत रचना के विशेष गुण हैं। आप की कविताओं में अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों की प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है। बिम्बविधान में आप कुशल कवि हैं। आप की रचनाओं में प्रगतिशील सामाजिकता, वैज्ञानिक चेतना तथा नव मानवीयता विद्यमान है। सामाजिक यथार्थ का आग्रह रखते हुए भी रूप और सौन्दर्य की चेतना उनमें प्रवल है। वे पूर्णतया वस्तुपरक नहीं हो पाते। स्वर-लय का सामंजस्य वर्ण-योजना, नाद-सौन्दर्यत और छन्द संयोजन में आप विशेष कुशल हैं।]

बौनों की दुनिया

हम सब बौने हैं
मन से, मस्तिष्क से भी
भावना से चेतना से भी
बुद्धि से, विवेक से भी
क्योंकि हम जन हैं
साधारण हैं
हम नहीं है विशिष्ट
— क्योंकि हर जमाना हमें
चाहता है बौने रहें
बरना मिलेंगे कहाँ
वक्ता को श्रोता
नेता को पिछलगुए
बुद्दिजनों को पाठक
आंदोलनों को भीड़

धर्मों को भक्त
संप्रदायों को मतिमंद
राज्यों को क्लर्क
कारखानों को मज़दूर
तोपों को भोजन
पार्टी बॉसों को यसमैन
राजाओं को गुलाम
डिक्टेटरों को अंधे
डिमोक्रेसी को मीडियॉकर
मतवादों को बुद्धू
समवायों को साँचे ढले आदमी
हम सब इन्हीं के लिए
युग-युग से जीते हैं
क्रीत दास हैं हम
इतिहास-बसन सीते हैं
इतिहास उनका है
हम सब तो स्याही है
विजय सभी उनकी
हम घायल सिपाही हैं
हम को हमेशा ही
घायल भी रहना
सिपाही भी रहना है
दैत्यों के काम निभा
बौने ही रहना है ।

शब्दार्थ

बौना = छोटे डील-डौल का मनुष्य, वामन, जमाना = काल, पिछलगुए = अनुगामी, मतिमंद = मंदबुद्धि, कारखाना = उत्पादन स्थल (Factory), तोप = युद्ध में काम आने वाला गोला-बारूद से चलित एक यन्त्र, बॉस = boss, मीडियॉकर (mediocre) = सामान्य मध्यम, क्रीत दास = खरीदे गए दास, इतिहास बसन = इतिहास रूपी वस्त्र, घायल = चोट लगा हुआ, दैत्य = दुराचारी व्यक्ति, निभाना = बराबर करते रहना ।

***

भारत भूषण अग्रवाल

[भारत भूषण अग्रवाल का जन्म मथुरा में हुआ। उनकी शिक्षा मथुरा और आगरा में हुई। एम.ए. करने के बाद नौकरी की तलाश में कलकत्ता गये। वहाँ तीन साल एक मिल में काम करते रहे। बाद में इलाहाबाद में 'प्रतीक' पत्रिका के कार्यालय में काम किया और फिर आकाशवाणी में शामिल हुए। आखिर वे साहित्य अकादमी के सहाय मंत्री भी बने।

अग्रवालजी मुक्तछन्द के वक्ता और प्रयोगशील नयी कविता के प्रारंभिक कवि हैं। वे युगबोध एवं सौन्दर्य-बोध के कवि हैं। वे महानगर के जीवन की विसंगतियों के चित्रकार हैं। उनकी प्रारम्भिक कविताएं रोमान्टिक काव्य-संस्कारों से अनुप्रणित हैं। लेकिन परवर्ती कविताएं सामाजिक विसंगतियों से जूझने वाली हैं। अपने काव्य-जीवन के प्रारंभिक दिनों में वे मार्क्सवाद के कायल थे। पर बाद में उनके दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हो गया। छवि के बन्धन, मुक्तिमार्ग, जागते रहो, अप्रस्तुत मन, काजल के फूल, अनुपस्थित लोग, एक उठा हुआ हाथ, और उतना वह सूरज है उनके काव्य संग्रह है। 'लौटती लहर की बाँसुरी' उनका उपन्यास है। 'अग्निलीक' विशिष्ट शैली में लिखा उनका नाटक है।

'वसीयत' अग्रवाल जी की हास्य-व्यंग्यात्मक कविता का नमूना है। जिन्दा रहते ही अपने शरीर के अंगों के सदुपयोग के लिए कमाल की कैसी वसीयत वे प्रस्तुत करते हैं, यह देखते ही बनता है!]

वसीयत

भला राख की ढेरी बनकर क्या होगा!
इससे तो अच्छा है
कि जाने से पहले
अपना सब कुछ दान कर जाऊँ।

अपनी आँख
मैं अपनी स्पेशल के ड्राइवर को दे जाऊँगा
ताकि वह गाडी चलाते समय भी
फुटपाथ पर चलती फुलवारियाँ देख सके।

अपने कान
अपने अफसर को
कि वे चुगलियों के शोर में कविता से न वंचित हों ।

अपना मुँह
नेताजी को
बेचारे भाषण के मारे अभी भूखे रह जाते हैं ।

अपने हाथ
श्री चतुर्भुज शास्त्री को
ताकि वे अपना नाम सार्थक कर सकें ।

अपने पैर
उस अभागे चोर को
जिसके, सुना है, पैर नहीं होते हैं ।

अपना दिल
मेरी जान, तुम को
ताकि तुम प्रेम करके पतिव्रता बनी रहो ।

शब्दार्थ

वसीयत = जमीन जायदाद का लेखा-जोखा (Will), स्पेशल = सबसे अलग, ताकि = जिससे, चलती चुगली = पर निंदा, भाषण के मारे = भाषण की वजह से, चतुर्भुज शास्त्री = किसी का नाम (चार भुजो वाला शास्त्री) ।

***